सम्प्रदाय और कांग्रेस

जिस समय बंग-भंगका आन्दोलन चल रहा था, मैंने एक संत-वृत्ति विद्याप्रिय जैन साधुसे पूछा " महाराज, आप कांग्रेसकी प्रवृत्तिमें भाग क्यों नहीं लेते; यह तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके वास्ते लड़नेवाली संस्था है और राष्ट्रीय स्वतंत्रतामें जैनोंकी स्वतंत्रता भी शामिल है। " उन्होंने सच्चे दिलसे, जैसा वे मानते और समझते थे, वैसा ही जवाब दिया, " महानुभाव, कांग्रेस देशकी संस्था है, इसमें देश-कथा और राज-कथा ही होती है, बल्कि राज्य-विरोध तो इसका ध्येय ही है। तब हम जैसे त्यागियोंके लिए इस संस्थामें भाग लेना या दिलचस्पी रखना कैसे धर्म कहा जा सकता है ? " एक दूसरे मौकेपर उपनिषदों और गीताका निरंतर अध्ययन करनेवाले संन्यासीसे भी मैंने यही सवाल पूछा। उन्होंने भी गम्भीरतासे जवाब दिया, " कहाँ तो अद्वैत-ब्रह्मकी शांति और कहाँ भेद-भावसे भरी हुई खिचड़ी जैसी संक्षोभकारी कांग्रेस ! हमारे जैसे अद्वैत मार्गमें विचरनेवाले और घरबार छोड़कर संन्यास लेनेवालेके लिए इस भेद और द्वैतके चक्करमें पड़ना कैसे उचित कहा जा सकता है ? "

महाभारतके वीर-रस-प्रधान आख्यान कहनेवाले एक कथाकार व्यासने भी कुछ ऐसे ही प्रश्नके जवाबमें फौरन सुनाया, " देखा तुम्हारी कांग्रेसको ! इसमें तो ज्यादातर अँग्रेजी पढ़े हुए और कुछ न कर सकनेवाले लोग ही जमा होते हैं और अँग्रेजीमें भाषण देकर तितर बितर हो जाते हैं। इसमें महाभारतके सूत्रधार कृष्णका कर्मयोग कहाँ हैं ? " अगर उस वक्त मैंने किसी सच्चे मुसलमान मौलवीसे भी यही प्रश्न किया होता तो उनका जवाब भी कुछ इसी तरहका होता, " कांग्रेसमें जाकर क्या करना है ? क्या इसमें इस्लामके फरमानोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालन होता है? यह तो जाति-भेदका पोषण करनेवाले और सगे भाइयोंको अलग माननेवाले लोगोंका शंभु-मेला-सा है।" कट्टर आर्यसमाजीको भी यदि इस प्रश्नका जवाब देना होता तो वह भी कहता, "अछूतोद्धार और स्त्रीको पूर्ण सम्मान देनेका वेदसम्मत आन्दोलन तो कांग्रेसमें कुछ भी नहीं दिखाई देता।" इसी तरह किसी बाइबिलभक्त पादरी साहबसे अगर यही प्रश्न किया जाता तो हिन्दुस्तानी होते हुए भी वे यही जवाब देते कि "कांग्रेस स्वर्गीय पिताके राज्यमें ले जानेवाले प्रेम-पन्थका दरवाजा थोड़े ही खोल देती है!" इस तरह एक समय था जब किसी भी सम्प्रदायके सच्चे अनुयायीके लिए कांग्रेस प्रवेश-योग्य नहीं थी, इसलिए कि उसको अपनी अपनी मान्यताके मूल सिद्धान्तोंका कांग्रेसकी प्रवृत्तिमें न अमल होता दिखाई पड़ता था, और न कल्पना ही होती थी।

समय बदला। लाला लाजपतरायने एक बार वक्तव्य दिया कि युवकोंको अहिंसाकी शिक्षा देना उनको उलटे रास्ते ले जाना है। अहिंसासे ही देशमें निर्बलता आ गई है। इस निर्बलताको अहिंसाकी शिक्षासे और भी उत्तेजना मिलेगी। लोकमान्य तिलकने भी कुछ ऐसे ही विचार प्रकट किये कि राजनीतिके क्षेत्रमें सत्यका पालन मर्यादित ही हो सकता है; इसमें तो चाणक्य-नीतिकी ही विजय होती है। यह समय अहिंसा और सत्यमें पूर्ण श्रद्धा रखते हुए भी आपत्तिके प्रसंगपर या दूसरे आपवादित प्रसंगोंपर अहिंसा और सत्यके अनुसरणका एकान्तिक आग्रह न रखनेवाले धार्मिक वर्गके लिए तो अनुकूल ही था। जो बात उनके मनमें थी, वही उनको मिल गई। किन्तु लालाजी या लो० तिलकके ये उद्‌गार जैनोंके अनुकूल नहीं थे। अब विचारशील जैन गृहस्थों और त्यागियोंके सामने दो बातें आईं, एक तो लालाजीके 'अहिंसासे निर्बलता आती है' इस आक्षेपका समर्थ रीतिसे जवाब देना और दूसरी बात यह सोचना कि जिस कांग्रेसके महारथी नेता हिंसा और चाणक्य-नीतिका पोषण करते हैं, उसमें अहिंसाको परम धर्म माननेवाले जैन किस तरह भाग लें? यह दूसरी बात जैन त्यागियोंकी प्राचीन मनोवृत्तिके बिल्कुल अनुकूल थी, बल्कि इससे तो उनको यह साबित करनेका नया साधन मिल गया कि कांग्रेसमें सच्चे जैन और विशेषकर त्यागी जैन भाग नहीं ले सकते। किन्तु पहले आक्षेपका जवाब क्या हो? जवाब तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशकी विभिन्न जैन संस्थाओं द्वारा बहुत-से दिये गये, किन्तु वे लालाजीके समान समर्थ व्यक्तित्ववाले देशभक्तके सामने मच्छरोंकी गुनगुनाहट जैसे ही रहे। कई जैन पत्रोंमें भी कुछ समय तक ऊहापोह होता रहा, और फिर शान्त हो गया। तिलकके सामने बोलनेकी भी किसी जैन गृहस्थ या त्यागीकी हिम्मत नहीं हुई। सब यही समझते और मानते रहे कि उनकी बात सही है। राज-काज भी क्या बिना चाणक्य नीतिके चल सकता है? किन्तु इसका सुन्दर जवाब जैनोंके पास इतना ही संभव था कि ऐसी संस्थामें हम अगर भाग ही न लें, तो पापसे बचे रहेंगे।

अचानक हिन्दुस्तानके कर्म-क्षेत्रके व्यास-पीठपर एक गुजरातका तपस्वी आया, और उसने जीवनमें उतारे हुए सिद्धान्तके बलपर लालाजीको जवाब दिया कि अहिंसासे निर्बलता नहीं आती है, अहिंसामें अपरिमित बल समाया हुआ है। उसने यह भी स्पष्ट किया कि अगर हिंसा वीरताकी ही पोषक होती या हो सकती, तो जन्मसे हिंसाप्रिय रहनेवाली जातियाँ भी भीरु नहीं दिखाई देतीं। यह जवाब अगर सिर्फ शास्त्रके आधारपर या कल्पनाके बलपर ही दिया गया होता, तो इसकी धज्जियाँ उड़ा दी गई होतीं और लालाजी जैसोंके सामने कुछ भी न चलती। तिलकको भी उस तपस्वीने जवाब दिया कि "राजनीतिका इतिहास दाव-पेचों और असत्यका इतिहास तो है, किन्तु वह इतिहास यहीं समाप्त नहीं हो जाता। उसके बहुतसे पृष्ठ अभी लिखे जानेको हैं।" तिलकको यह दलील तो मान्य नहीं हुई, किन्तु उनके मनपर यह छाप अवश्य पड़ गई कि दलील करनेवाला व्यक्ति सिर्फ बोलनेवाला नहीं है। वह तो जो कहता है, सो करके दिखानेवाला है और सच्चा है। इसलिए तिलक एकाएक उसके कथनकी उपेक्षा नहीं कर सके और अगर करते भी तो वह सत्यप्राण कहाँ किसीकी परवाह करनेवाला था!

अहिंसा धर्मके समर्थ रक्षककी इस क्षमतापर जैनोंके घर मिठाई बाँटी गई; सब राजी हुए। साधु और गद्दीधारी आचार्य भी कहने लगे कि देखो लाला-जीको कैसा जवाब दिया है! महावीरकी अहिंसाको वास्तवमें गाँधीजीने ही समझा है। सत्यकी अपेक्षा अहिंसाको प्रधानता देनेवाले जैनोंके लिए अहिंसाका बचाव ही मुख्य संतोषका विषय था। उन्हें इस बातसे बहुत वास्ता

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

नहीं था कि राज-काजमें चाणक्य-नीतिका अनुसरण किया जाय या आत्यन्तिक सत्य नीतिका। किन्तु गाँधीजीकी शक्ति प्रकट होनेके बाद जैनोंमें सामान्यतः स्वधर्म-विजयकी जितनी प्रसन्नता प्रकट हुई, उतनी ही वैदिक और मुसलमान समाजके धार्मिक लोगोंमें तीव्र रोष-वृत्ति जागृत हुई। वेद-भक्त आर्यसमाजियोंमें ही नहीं, महाभारत, उपनिषत् और गीताके भक्तोंमें भी यह भाव उत्पन्न हो गया कि गाँधी तो जैन मालूम पड़ता है। यदि यह वैदिक या ब्राह्मण धर्मका मर्म लो० तिलकके समान जानता होता, तो अहिंसा और सत्यकी इतनी आत्यन्तिक और एकान्तिक हिमायत न करता। कुरान-भक्त मुसलमानोंका चिढ़ना तो स्वाभाविक ही था। चाहे जो हो, पर यह निश्चय है कि जबसे कांग्रेसके कार्य-प्रदेशमें गाँधीजीका हस्त-प्रसार हुआ, तबसे कांग्रेसके द्वार जैनोंके वास्ते खुल गये। इस बातके साथ-साथ यह भी कह देना चाहिए कि अगर हिन्दुस्तानमें जैनों जितने या उनसे कम प्रभावशाली बौद्ध गृहस्थ या भिक्षु होते तो उनके वास्ते भी कांग्रेसके द्वार धर्म-दृष्टिसे खुल गये होते।

मेरी समझमें ऊपरका संक्षिप्त विवरण साम्प्रदायिक मनोवृत्ति समझनेके लिए काफी है। साम्प्रदायिक भावनासे मन इतना संकीर्ण और निष्क्रिय जैसा हो जाता है कि उसे विशाल कार्य-प्रदेशमें आने तथा सक्रिय सहयोग देनेकी सूझती ही नहीं। इसलिए जब तिलक और लालाजीकी भावना राजकीय क्षेत्रमें मुख्य थी, तब भी महाभारत, गीता और चाणक्य-नीतिके भक्त कट्टर हिन्दुओं और कट्टर सन्यासियोंने कांग्रेसको अपना कार्य-क्षेत्र नहीं माना। वे किसी न किसी बहाने अपनी धार्मिकता कांग्रेससे बाहर रहनेमें ही समझते थे। इसी तरह जब गाँधीजीकी सत्य और अहिंसाकी तात्त्विक दृष्टि राजकीय क्षेत्रमें दाखिल हुई, तब भी अहिंसाके अनन्य उपासक और प्रचारक कट्टर जैन गृहस्थ और जैन साधु कांग्रेसके दरवाजेसे दूर रहे और उससे बाहर रहनेमें ही अपने धर्मकी रक्षा करनेका संतोष पोषण करते रहे।

किन्तु दैव शिक्षाके द्वारा नई सृष्टि तैयार कर रहा है। प्रत्येक सम्प्रदायके युवकोंने थोड़े या ज्यादा परिमाणमें शिक्षा-क्षेत्रमें भी परिवर्तन शुरू कर दिया है। युवकोंका विचार-बिन्दु तेजीसे बदलता जा रहा है। शिक्षाने कट्टर साम्प्रदायिक पिताके पुत्रमें भी पिताकी अपेक्षा विशेष विशाल दृष्टि-बिन्दु निर्माण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है। इसलिए हरएक सम्प्रदायकी नई पीढ़ीके लोगोंको चाहे वे अपने धर्मशास्त्रके मूल सिद्धान्त बहुत गम्भीरतासे जानते हों या न जानते हों, यह स्पष्ट मालूम हो गया कि अपने बुजुर्ग और धर्माचार्य जिन धर्म-सिद्धान्तोंकी महत्ता गाते हैं उन सिद्धान्तोंको वे अपने घेरोंमें सजीव या कार्यशील नहीं करते या नहीं कर सकते। क्योंकि अपने बाड़ेके बाहर कांग्रेस जैसे व्यापक क्षेत्रमें भी वे अपनी सिद्धान्तकी सक्रियता और शक्यता नहीं मानते। इसलिए नई पीढ़ीने देख लिया कि उसके वास्ते ये सम्प्रदाय, व्यवहार और धर्म दोनों दृष्टिसे बंधनस्वरूप हैं। इस खयालसे हरएक सम्प्रदायकी शिक्षित नई पीढ़ीने राष्ट्रीयताकी तरफ झुककर और साम्प्रादायिक भेदभाव छोड़कर कांग्रेसको अपना कार्य-क्षेत्र बना लिया है।

अब तो सम्प्रदायके कट्टर पंडितों, धर्माचार्यों और कांग्रेसानुगामी नई पीढ़ीके बीच विचार-द्वन्द्व शुरू हो गया। जब कट्टर मुल्ला या मौलवी तरुण मुसलमानसे कहता है कि "तुम कांग्रेसमें जाते हो, किन्तु वहाँ तो इस्लामके विरुद्ध बहुत-सी बातें होती हैं, तुम्हारा फर्ज सबसे पहले अपने दीन इस्लामको रोशन करना और अपने भाइयोंको अधिक सबल बनाना है।" तब इस्लाम तरुण जवाब देता है कि "राष्ट्रीय विशाल क्षेत्रमें तो उल्टा मुहम्मद साहबके भ्रातृभावके सिद्धान्तको विशेष व्यापक रूपसे सजीव बनाना संभव है। सिर्फ इस्लामहीके बाड़ेमें तो यह सिद्धान्त शिया, सुन्नी, वगैरह नाना तरहके भेदोंमें पड़कर खण्डित हो गया है और समग्र देशोंके अपने पड़ोसी भाइयोंको 'पर' मानता आया है।" इसपर मुल्ला या मौलवी इन युवकोंको नास्तिक समझकर दुतकार देता है। सनातनी पण्डित और सनातनी संन्यासी भी इसी भाँति अपनी नई पीढ़ीसे कहते हैं कि "अगर तुमको कुछ करना ही है तो क्या हिन्दू जातिका क्षेत्र छोटा है? कांग्रेसमें जाकर तो तुम धर्म, कर्म और शास्त्रकी हत्या ही करोगे।" नई पीढ़ी उनसे कहती है कि आप जिस धर्म, कर्म और शास्त्रोंके नाशकी बात कहते हो उसको अब नई रीतिसे जीवित करनेकी जरूरत है।

यदि प्राचीन रीतिसे ही उनका जीवित रह सकना शक्य होता तो इतने पंडितों और संन्यासियोंके होते हुए हिन्दू धर्मका तेज नष्ट नहीं हुआ होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब कट्टरपंथी जैन गृहस्थ और त्यगी धर्मगुरु तरुण पीढ़ीसे कहते हैं कि "तुम गाँधी गाँधी पुकारकर कांग्रेसकी तरफ क्यों दौड़ते हो ? अगर तुमको कुछ करना ही है तो अपनी जाति और समाजके लिए क्यों नहीं कुछ करते ?" तरुण कोरा जवाब देते हैं कि "अगर समाज और जातिमें ही काम करना शक्य होता और तुम्हारी इच्छा होती तो क्या तुम खुद ही इसमें कोई काम नहीं करते ? जब तुम्हारी जातीय और साम्प्रदायिक भावनाने तुम्हारे छोटेसे समाजमें ही सैकड़ों भेदोपभेद पैदा कर क्रिया-कांडके कल्पित जालोंकी एक बाढ़ खड़ी कर दी है, जिससे तुम्हारे खुदके लिए भी कुछ करना शक्य नहीं रहा, तब हमको भी इस बाड़ेमें खीचकर क्यों खिलवाड़ करना चाहते हो ?" इस प्रकार प्राचीन साम्प्रदायिक और नए राष्ट्रीय मानसके बीच संघर्ष चलता रहा, जो अब भी चालू है।

विचार-संघर्ष और ऊहापोहसे जिस प्रकार राष्ट्रीय महासभाका ध्येय और कार्यक्रम बहुत स्पष्ट और व्यापक बना है, उसी प्रकार नई पीढ़ीका मानस भी अधिकाधिक विचारशील और असंदिग्ध बन गया है। आजका तरुण ईसाई भी यह स्पष्ट रूपसे समझता है कि गरीबों और दुखियोंकी भलाई करनेका ईसाका प्रेम-संदेश यदि जीवनमें सच्ची रीतिसे उतारना अभीष्ट हो, तो उसके लिए हिन्दुस्तानमें रहकर राष्ट्रीय महासभा जैसा दूसरा विशाल और असंकुचित क्षेत्र नहीं मिल सकता। आर्य समाजमें भी नई पीढ़ीके लोगोंका यह निश्चय है कि स्वामी दयानन्दद्वारा प्रतिपादित सारा कार्यक्रम उनके दृष्टिबिन्दु-से और भी अधिक विशाल क्षेत्रमें अमलमें लानेका कार्य कांग्रेस कर रही है। इस्लाममें भी नई पीढ़ीके लोग अपने पैगम्बर साहबके भ्रातृभावके सिद्धान्तको कांग्रेसके पंडालमें ही मूर्तिमान होता देख रहे हैं। कृष्णके भक्तोंकी नई पीढ़ी भी उनके कर्मयोगकी शक्ति कांग्रेसमें ही पाती है। नई जैन पीढ़ी भी महावीरकी अहिंसा और अनेकांत दृष्टिकी व्यावहारिक तथा तात्त्विक उपयोगिता कांग्रेसके कार्यक्रमके बाहर कहीं नहीं देखती। इसी कारण आज जैन समाजमें एक प्रकारका क्षोभ पैदा हो गया है, जिसके बीज वर्षों पहले बोये जा चुके थे। आज विचारशील युवकोंके सामने यह प्रश्न है कि उनको अपने विचार और कार्य-नीतिके अनुकूल आखिरी फैसला कर लेना चाहिए। जिसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझमें आवे, वह इसका पालन करे, जिसकी समझमें न आवे, वह प्राचीन परिपाटीका अनुसरण करे। नई पीढ़ीके लिए स्पष्ट शब्दोंमें इस तरहके निश्चित सिद्धान्त और कार्यक्रमके होनेकी अनिवार्य जरूरत है।

मुझे स्पष्ट दिखाई देता है, और मैं यह मानता हूँ कि राष्ट्रीय महासभाके ध्येय, विचारसरणि और कार्य-प्रदेशमें अहिंसा तथा अनेकान्तदृष्टि, जो जैन तत्त्वके प्राण हैं, अधिक तात्त्विक रीतिसे और अधिक उपयोगी तरीकेसे कार्य रूपमें आ रहे हैं। यद्यपि कांग्रेसके पंडालके आसनोंपर पीले या सफेद वस्त्रधारी या नग्नमूर्ति जैन साधु बैठे नहीं दिखाई देते; वहाँ उनके मुँहसे निकलती हुई अहिंसाकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या किन्तु अहिंसाकी रक्षाके लिए प्रशस्त हिंसा करनेके उपदेशकी वाग्धारा नहीं सुनाई देती; यह भी सत्य है कि वहाँ भगवानकी मूर्तियाँ, उनकी पूजाके लिए फूलोंके ढेर, सुगंध-द्रव्य, और आरतीके समयकी घंटाध्वनि नहीं होती; वहाँके व्याख्यानोंमें 'तहत्ति तहत्ति' कहने वाले भक्त और 'गहूली' गानेवाली बहनें भी नहीं मिलतीं; कांग्रेसकी रसोईमें उपधान तप वगैरहके आगे पीछेकी तैयारीके विविध मिष्टान्न भी नजर नहीं आते; फिर भी जिनमें विचार-दृष्टि है, उनको स्पष्ट समझमें आ जाता है कि कांग्रेसकी प्रत्येक विचारणा और प्रत्येक कार्यक्रमके पीछे व्यावहारिक अहिंसा और व्यावहारिक अनेकान्त दृष्टि काम कर रही है।

खादी उत्पन्न करनी करानी और उसीका व्यवहार करना, यह कांग्रेसके कार्यक्रममें है। क्या कोई जैन साधु बता सकता है कि इसकी अपेक्षा अहिंसाका तत्त्व किसी दूसरी रीतिसे कपड़ा तैयार करनेमें है? सिर्फ छोटी छोटी जातियोंको ही नहीं, छोटे छोटे सम्प्रदायोंको ही नहीं, परन्तु परस्पर एक दूसरेसे एकदम विरोधी भावनावाली बड़ी बड़ी जातियों और बड़े बड़े पंथोंको भी उनके एकान्तिक दृष्टिबिन्दुसे खींच कर सर्व-हित-समन्वयरूप अनेकान्त दृष्टिमें संगठित करनेका कार्य क्या कांग्रेसके सिवाय दूसरी कोई संस्था या कोई जैन 'पोषाल' करती है या कर सकती है? और जब यह बात है तो धार्मिक कहे जानेवाले जैन साम्प्रदायिक गृहस्थों और जैन साधुओंकी दृष्टिसे भी उनके खुदके ही अहिंसा और अनेकान्त दृष्टिके सिद्धान्तको आंशिक रूपमें भी सजीव कर बतानेके लिए नई पीढ़ीको कांग्रेसका मार्ग ही स्वीकार करना चाहिए, यही फलित होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह बात चारों तरफ फैलाई जाती है कि जैन शास्त्रोंमें अनेक उदात्त सिद्धान्त हैं। उदाहरणके लिए प्रत्येक साधु और आचार्य कह सकता है कि महावीरने तो बिना जांत-पाँतके भेदके, पतितों और दलितोंको भी उन्नत करनेकी बात कही है, स्त्रियोंको भी समान समझनेका उपदेश दिया है; किन्तु आप जब इन उपदेशकोंसे पूछेंगे कि आप खुद इन सिद्धान्तोंके माफिक व्यवहार क्यों नहीं करते, तो वे एक ही जवाब देंगे कि क्या करें, लोकरूढ़ि दूसरी तरफ हो गई है, इसलिए सिद्धान्तके अनुसार व्यवहार करना कठिन है। वक्त आनेपर यह रूढ़ि बदलेगी, और तब सिद्धान्त अमलमें आवेंगे। इस तरह ये उपदेशक रूढ़ि बदलनेके बाद काम करनेको कहते हैं। सो ये रूढ़ियाँ बदलकर या तोड़कर उनके लिए कार्यक्षेत्र निर्माण करनेका ही तो कार्य कांग्रेस कर रही है। इसलिए कांग्रेसके सिवाय दूसरा कोई सांप्रदायिक कार्यक्रम ऐसा नहीं है जो नई पीढ़ीके विचारकोंको संतोष प्रदान कर सके।

हाँ, सम्प्रदायमें ही सन्तोष मान लेने लायक अनेक बातें हैं। जो उनको पसन्द करें, वे उसीमें रहें। यदि थोड़ी अधिक कीमत देकर मोटी खुरदरी खादी पहनकर भी अहिंसा वृत्तिका पोषण न करना हो, और नलके ऊपर चौबीसों घण्टे छन्ना कपड़ा बाँधकर या हिंसकोंके हाथसे अनेक जीवोंको छुड़वाकर अहिंसा पालनेका संतोष करना हो, तो सम्प्रदायिक क्षेत्र बहुत सुन्दर है। लोग उस व्यक्तिको सहज ही अहिंसाप्रिय और धार्मिक मान लेंगे, और उसको कुछ ज्यादा करना कराना भी न पड़ेगा। दलितोद्धारके लिए प्रत्यक्ष कुछ भी कार्य किये बिना या उसके लिए धन व्यय किये बिना भी सम्प्रदायमें बड़े धार्मिक कहलानेकी विधि नोकारशी, पूजापाठ, और संघ निकालनेकी खर्चीली प्रथाएँ मौजूद हैं, जिनमें दिलचस्पी लेनेसे धर्म-पालन समझा जाय, संप्रदायका पोषण समझा जाय और इसके अलावा तात्त्विक रूपसे कुछ करना भी न पड़े। जहाँ देखो वहाँ सम्प्रदायमें एक ही वस्तु नजर आवेगी, और वह यह कि कोई न कोई निर्जीव क्रियाकांड, कोई न कोई धार्मिक व्यवहारकी रूढ़ि पूरी कर उसीमें धर्म करनेका संतोष मान लेना और फिर उसीके आधारपर आजीविकाका पोषण करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आजका युवक जीवन चाहता है; उसको स्वरूपकी बनिस्बत आत्माकी ज्यादा फिक्र है; शुष्क वादोंकी अपेक्षा जीवित सिद्धान्त ज्यादा प्रिय लगते हैं; पारलौकिक मोक्षकी निष्क्रिय बातोंकी अपेक्षा ऐहिक मोक्षकी सक्रिय बातें ज्यादा आकर्षित करती हैं; संकुचित सीमामें चलने या दौड़नेमें उसे कोई दिलचस्पी नहीं। उसको धर्म करना हो तो धर्म और कर्म करना करना हो तो कर्म, परन्तु जो करना हो खुल्लमखुल्ला करना अच्छा लगता है; धर्मकी प्रतिष्ठाका लोभ लेकर दंभके जालमें पड़ना उसे अभीष्ट नहीं। उसका मन किसी वेष, किसी क्रिया-कांड या किसी विशेष प्रकारके व्यवहार मात्रमें बँधे रहनेको तैयार नहीं; इसीलिए आजका युवक-मानस अपना अस्तित्व और विकास केवल साम्प्रदायिक भावनामें पोषित कर सके, ऐसी बात नहीं रही है। अतएव जैन हो या जैनेतर, प्रत्येक युवक राष्ट्रीय महासभाके विशाल प्रांगणकी तरफ हँसते हुए चेहरे और फूलती हुई छातीसे एक दूसरेके साथ कन्धा मिलाकर जा रहा है।

यदि इस समय सारे सम्प्रदाय चेत जायँ तो नये रूपमें उनके सम्प्रदाय जी सकते हैं और अपनी नई पीढ़ीके लोगोंका आदर अपनी तरफ खींचकर रख सकते हैं। जिस तरह आजका संकीर्ण जैन सम्प्रदाय क्षुब्ध हो उठा है, उसी तरह यदि वह नवयुवकोंकी तरफ–सच्चे तौरपर नवयुवकोंको आकर्षित करनेवाली राष्ट्रीय महासभाकी तरफ–उपेक्षा या तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेगा तो उसकी दोनों तरफ मौत है।

नई-शिक्षाप्राप्त एक तरुणी एक गोपाल-मन्दिरमें कुतुहलवश चली गई। गोस्वामी दामोदर लालजीके दर्शनोंके हेतु बहुत-सी भावुक ललनाएँ जा रही थीं, यह भी उनके साथ हो ली। गोस्वामीजी भक्तिनोंको अलग अलग संबोधन करके कहने लगे कि "मां कृष्ण भावय आत्मानं च राधिकाम्" अर्थात् मुझे कृष्ण समझो और अपनेको राधिका। और सब भोली भक्तिनें तो महाराज श्रीके वचनोंको कृष्ण-वचन समझकर इसी तरह मानती आ रहीं थीं, किन्तु उस नवशिक्षिता युवतीमें तर्कबुद्धि जाग्रत हो गई थी। वह चुप नहीं रह सकी; नम्रतापूर्वक किन्तु निडरतासे बोली कि "आपको कृष्ण माननेमें मुझे जरा भी आपत्ति नहीं, किन्तु मैं यह देखना चाहती हूँ कि कृष्णने जिस तरह कंसके हाथीको पछाड़ दिया था, उसी तरह आप किसी हाथी नहीं, सांड़ नहीं, एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोटे बछड़ेको ही पछाड़ दीजिए। कृष्णने तो कंसके मुष्टिक और चाणूर मल्लोंको परास्त किया था, आप ज्यादा नहीं तो गुजरातके एक साधारणसे पहलवान युवकको ही परास्त कर दीजिए। कृष्णाने कंसको पछाड़ दिया था; आप अपने वैष्णव धर्मके विरोधी किसी यवनको ही पछाड़ दीजिए।" यह जबर्दस्त तर्क था। महाराजने बड़बड़ाते हुए कहा कि इस तरुणीमें कलियुगकी बुद्धि आ गई है। मेरी धारणा है कि इस तरहकी कलियुगी बुद्धि रखनेवाला आज प्रत्येक संप्रदायका प्रत्येक युवक अपने संप्रदायके शास्त्रोंको सांप्रदायिक दृष्टिसे देखनेवाले और उसका प्रवचन करनेवाले सांप्रदायिक धर्म-गुरुओंको ऐसा ही जवाब देगा। मुसलमान युवक होगा तो मौलवीसे कहेगा कि "तुम हिन्दुओंको काफिर कहते हो, परन्तु तुम खुद काफिर क्यों नहीं हो? जो गुलाम होते हैं, वे ही काफिर हैं। तुम भी तो गुलाम हो। अगर गुलामीमें रखनेवालोंको काफिर गिनते हो तो राज्यकर्त्ताओंको काफिर मानो; फिर उनकी सोड़में क्यों घुसते हो?" युवक अगर हिन्दू होगा तो व्यासजीसे कहेगा कि "यदि महाभारतकी वीरकथा और गीताका कर्मयोग सच्चा है तो आज जब वीरत्व और कर्मयोगकी खास जरूरत है तब तुम प्रजाकीय रणांगणसे क्यों भागते हो?" युवक अगर जैन होगा तो 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' का उपदेश देनेवाले जैन गुरुसे कहेगा कि "अगर तुम वीर हो तो सार्वजनिक कल्याणकारी प्रसंगों और उत्तेजनाके प्रसंगोंपर क्षमा पालन करनेका पदार्थ-पाठ क्यों नहीं देते? सात व्यसनोंके त्यागका सतत उपदेश करनेवाले तुम जहाँ सब कुछ त्याग कर दिया है, वहीं बैठ कर इस प्रकार त्यागकी बात क्यों करते हो? देशमें जहाँ लाखों शराबी बर्बाद होते हैं, वहाँ जाकर तुम्हारा उपदेश क्यों नहीं होता? जहाँ अनाचारजीवी स्त्रियाँ बसती हैं, जहाँ कसाईघर हैं और मांस-विक्रय होता है, वहाँ जाकर कुछ प्रकाश क्यों नहीं फैलाते?" इस प्रकार आजका कलियुगी युवक किसी भी गुरुके उपदेशकी परीक्षा किये बिना या तर्क किये बिना माननेवाला नहीं है। वह उसीके उपदेशको मानेगा जो अपने उपदेशको जीवनमें उतार कर दिखा सके। हम देखते हैं कि आज उपदेश और जीवनके बीचके भेदकी दिवाल तोड़नेका प्रयत्न राष्ट्रीय महासभाने किया है और कर रही है। इसलिए सभी सम्प्रदायोंके लिए यही एक कार्य-क्षेत्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन समाजमें तीन वर्ग हैं। एक सबसे संकुचित है। उसका मानस ऐसा है कि यदि किसी वस्तु, कर्त्तव्य और प्रवृत्तिके साथ अपना और अपने जैन धर्मका नाम न हो तो उस वस्तु, उस कर्त्तव्य और उस प्रवृत्तिकी, चाहे वह कितनी भी योग्य क्यों न हो, तिरस्कार नहीं, तो कमसे कम उपेक्षा तो जरूर करेगा। इसके मुखिया साधु और गृहस्थ दोनों हैं। इनमें पाये जानेवाले कट्टर क्रोधी और जिद्दी लोगोंके विषयमें कुछ कहनेकी अपेक्षा मौन रहना ज्यादा अच्छा है। दूसरा वर्ग उदार नामसे प्रसिद्ध है। इस वर्गके लोग प्रकट रूपसे अपने नामका या जैनधर्मका बहुत आग्रह या दिखावा नहीं करते। बल्कि शिक्षाके क्षेत्रमें भी गृहस्थोंके लिए कुछ करते हैं। देश परदेशमें, सार्वजनिक धर्म-चर्चा या धर्म-विनिमयकी बातमें दिलचस्पी रखकर जैन धर्मका महत्त्व बढ़ानेकी चेष्टा करते हैं। यह वर्ग कट्टर वर्गकी अपेक्षा अधिक विचारवान् होता हैं। किन्तु हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इस वर्गकी पहले वर्गकी अपेक्षा कुछ सुधरी हुई मनोदशा है। पहला वर्ग तो क्रोधी और निडर होकर जैसा मानता है, कह देता है, परन्तु यह दूसरा वर्ग भीरुताके कारण बोलता तो नहीं है, फिर भी दोनोंकी मनोदशाओंमें बहुत फर्क नहीं है। यदि पहले वर्गमें रोष और अहंकार है, तो दूसरे वर्गमें भीरुता और कृत्रिमता है। वास्तविक धर्मकी प्रतिष्ठा और जैन धर्मको सजीव बनानेकी प्रवृत्तिसे दोनों ही समान रूपसे दूर हैं। उदाहरण स्वरूप, राष्ट्रीय जीवनकी प्रवृत्तिको ही ले लीजिए। पहला वर्ग खुल्लमखुल्ला कहेगा कि राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें जैन धर्मको स्थान कहाँ है? ऐसा कहकर वह अपने भक्तोंको उस तरफ जानेसे रोकेगा। दूसरा वर्ग खुल्लमखुल्ला ऐसा नहीं कहेगा किन्तु साथ ही अपने किसी भक्तको राष्ट्रीय जीवनकी तरफ जाता देखकर प्रसन्न नहीं होगा। खुदके भाग लेनेकी तो बात दूरकी है, यदि कोई उनका भक्त राष्ट्रीय प्रवृत्तिकी तरफ झुका होगा या झुकता होगा, तो उसके उत्साहको वे "जो गुड़से मरे उसे विषसे न मारिए" की नीतिसे ठण्डा अवश्य कर देंगे। उदाहरण लीजिए। यूरोप अमेरिकामें विश्वबंधुत्वकी परिषदें होती हैं, तो वहाँ जैनधर्म जबर्दस्ती अपना स्थान बनाने पहुँच जाता है, परन्तु बिना परिश्रमके ही विश्वबंधुत्वकी प्रत्यक्ष प्रवृत्तिमें भाग लेनेके देशमें ही प्राप्त सुलभ अवसरका वह उपयोग नहीं करता। राष्ट्रीय महासभाके समान विश्व-बंधुत्वका सुलभ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घरका कार्यक्षेत्र छोड़कर लंदन और अमेरिकाकी परिषदोंमें भाग लेनेके लिए माथापच्ची करता है। मालूम नहीं, स्वदेशकी प्रत्यक्ष विश्वबंधुत्वसाधक प्रवृत्तियोंमें अपने तन मन और धनका सहयोग देना छोड़कर ये परदेशमें हजारों मील दूरकी परिषदोंमें दस पाँच मिनट बोलनेके लिए जबर्दस्ती अपमान-पूर्वक क्यों ऊँचे नीचे होते हैं। इन सबका जवाब ढूँढ़ेंगे तो आपको दूसरे वर्गका मानस समझमें आ जावेगा। बात यह है कि दूसरे वर्गको कुछ करना तो अवश्य है, परन्तु वही करना है जो प्रतिष्ठा बढ़ावे और फिर वह प्रतिष्ठा ऐसी हो कि अनुयायी लोगोंके मनमें बसी हुई हो। ऐसी न हो कि जिससे अनुयायियोंको कोई छेड़छाड़ करनेका मौका मिले। इसीलिए यह उदार वर्ग जैनधर्ममें प्रतिष्ठाप्राप्त अहिंसा और अनेकान्तके गीत गाता है। ये गीत होते भी ऐसे हैं कि इनमें प्रत्यक्ष कुछ भी नहीं करना पड़ता। पहला वर्ग तो इन गीतोंके लिए उपाश्रयोंका स्थान ही पसन्द करता था, जब कि दूसरा वर्ग उपाश्रयके सिवाय दूसरे ऐसे स्थान भी पसन्द करता है जहाँ गीत तो गाये जा सकें, पर कुछ करनेकी आवश्यकता न हो। तत्त्वतः दूसरा उदार वर्ग अधिक भ्रामक है, कारण उसको बहुत लोग उदार समझते हैं। गायकवाड़नरेश जैसे दूरदर्शी राजपुरुषोंके लिए विश्व-बंधुत्वकी भावनाको मूर्तिमान करनेवाली राष्ट्रीय महासभाकी प्रवृत्तिमें भाग न लेनेका कोई कारण रहा हो, यह समझमें आ सकता है किन्तु त्याग और सहिष्णुताका चोला पहनकर बैठे हुए और तपस्वी माने जानेवाले जैन साधुओंके विषयमें यह समझना मुश्किल है। वे अगर विश्वबन्धुत्वको वास्तवमें जीवित करना चाहते हैं तो उसके प्रयोगका सामने पड़ा हुआ प्रत्यक्ष क्षेत्र छोड़कर केवल विश्वबन्धुत्वकी शाब्दिक खिलवाड़ करनेवाली परिषदोंकी मृगतृष्णाके पीछे क्यों दौड़ते हैं?

अब तीसरे वर्गको लीजिए। यह वर्ग पहले कहे हुए दोनों वर्गोंसे बिलकुल भिन्न है। क्योंकि इसमें पहले वर्ग जैसी संकुचित दृष्टि या कट्टरता नहीं है कि जिसको लेकर चाहे जिस प्रवृत्तिके साथ केवल जैन नाम जोड़कर ही प्रसन्न हो जाय, अथवा सिर्फ क्रियाकांडोंमें मूर्छित होकर समाज और देशकी प्रत्यक्ष सुधारने योग्य स्थितिके सामने आँख बन्द करके बैठ रहे। यह तीसरा वर्ग उदार हृदयका है, लेकिन दूसरे वर्गकी उदारता और इसकी उदारतामें बड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर है। दूसरा वर्ग रूढ़ियों और भयके बन्धन छोड़े बिना ही उदारता दिखलाता है जिससे उसकी उदारता कामके अवसरपर केवल दिखावा सिद्ध होती है, जब कि तीसरे वर्गकी उदारता शुद्ध कर्त्तव्य और स्वच्छ दृष्टिमेंसे उत्पन्न होती है। इसलिए उसको सिर्फ जैन नामका मोह नहीं होता, साथ ही उसके प्रति घृणा भी नहीं होती। इसी प्रकार वह उदारता या सुधारके केवल शाब्दिक खिलवाड़में नहीं फँसता। वह पहले अपनी शक्तिका माप करता है और पीछे कुछ करनेकी सोचता है। उसको जब स्वच्छ दृष्टिसे कुछ कर्त्तव्य सूझता है तब वह बिना किसीकी खुशी या नाराजीका ख्याल किये उस कर्त्तव्यकी ओर दौड़ पड़ता है। वह केवल भूतकालसे प्रसन्न नहीं होता। दूसरे जो प्रयत्न करते हैं, सिर्फ उन्हींकी तरफ देखते हुए बैठे रहना पसन्द नहीं करता। उसको जाति, संप्रदाय, या क्रियाकांडके प्रतिबन्ध पसन्द नहीं होते। वह इन प्रतिबन्धोंके भीतर भी रहता है और इनसे बाहर भी विचरता है। उसका सिद्धान्त यही रहता है कि धर्मका नाम मिले या न मिले, किसी किस्मका सर्व-हितकारी कल्याण-कार्य करना चाहिए।

यह जो तीसरा वर्ग है, वह छोटा है, लेकिन उसकी विचार-भूमिका और कार्य-क्षेत्र बहुत विशाल है। इसमें सिर्फ भविष्यकी आशाएँ ही नहीं होतीं पर अतीतकी शुभ विरासत और वर्तमान कालके कीमती और प्रेरणादायी बल तकका समावेश होता है। इसमें थोड़ी, आचरणमें आ सके उतनी, अहिंसाकी बात भी आती है। जीवनमें उतारा जा सके और जो उतारना चाहिए, उतना अनेकान्तका आग्रह भी रहता है। जिस प्रकार दूसरे देशोंके और भारतवर्षके अनेक संप्रदायोंने ऊपर बतलाये हुए एक तीसरे युवक वर्गको जन्म दिया है, उसी तरह जैन परम्पराने भी इस तीसरे वर्गको जन्म दिया है। समुद्रमेंसे बादल बनकर फिर नदी रूपमें होकर अनेक तरहकी लोक-सेवा करते हुए जिस प्रकार अंतमें वह समुद्रमें ही लय हो जाता है, उसी प्रकार महासभाके आँगनमेंसे भावना प्राप्त कर तैयार हुआ और तैयार होता हुआ यह तीसरे प्रकारका जैन वर्ग लोक-सेवा द्वारा आखिरमें महासभामें ही विश्रान्ति लेगा।

हमको समझ लेना चाहिए कि आखिरमें तो जल्दी या देरीसे सभी संप्रदा-योंको अपने अपने चौकोंमें रहते हुए या चौकोंसे बाहर जाकर भी वास्तविक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदारताके साथ महासभामें मिल जाना अनिवार्य्य होगा। महासभा राजकीय संस्था होनेसे धार्मिक नहीं, या सबका शंभु-मेला होनेके कारण अपनी नहीं, दूसरोंकी है—यह भावना, यह वृत्ति अब दूर होने लग गई है। लोग समझते जाते हैं कि ऐसी भावना केवल भ्रमवश थी।

पर्युषण पर्वके दिनोंमें हम सब मिलें और अपने भ्रम दूर करें, तभी यह ज्ञान और धर्मका पर्व मनाया समझा जायगा। आप सब निर्भय होकर अपनी स्वतंत्र दृष्टिसे विचार करने लगें, यही मेरी अभिलाषा है। और उस समय चाहे जिस मतमें रहें, चाहे जिस मार्गसे चलें, मुझे विश्वास है, आपको राष्ट्रीय महासभामें ही हरेक संप्रदायकी जीवन-रक्षा मालूम पड़ेगी; उसके बाहर कदापि नहीं।

पर्युषण-व्याख्यानमाला
बम्बई, १९३८ } —अनुवादक **भंवरमल सिंघी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org